

# स्त्री—विमर्श यथार्थ और भ्रातियां

## सारांश

आधुनिक समाज के लिए नारी विमर्श की संकल्पना काल्पनिक नहीं बल्कि एक यथार्थवादी ठोस अवधारणा है। यथार्थ बोध से पूर्ण स्त्री—विमर्श केवल कहने या सुनने तक सीमित नहीं हैं बल्कि उसमें समाज को जाग्रत करने तथा सोचने के लिए विवश कर देने की अद्भुत शक्ति भी है। स्त्री—विमर्श में स्त्री जीवन की सच्ची अनुभूति है इसलिए सार्थक एवं सापेक्ष है। देशकाल की सीमाओं से परे इस विचारधारा ने स्त्री जीवन की स्थितियों और समस्याओं का जिक्र किया है जिसे समाज के सामने प्रस्तुत करने में यथार्थ का सहारा लिया गया है। स्त्री—विमर्श की अवधारणा अनुभव के आधार पर निर्मित हुई है लेकिन इसके समर्थक कम हैं क्योंकि स्त्री एवं स्त्रीत्व के विषय में कुछ विशिष्ट धारणाएं/भ्रातियाँ प्रचलित और मान्य हैं जिन्हें स्त्री संबंधी वास्तविक मान्यताएँ तथा व्यवहार का आधार भी मान लिया गया है। स्त्री—विमर्श में इन भ्रातियों और धारणाओं का जबरदस्त प्रभाव देखा जा सकता है जबकि ये भ्रातियाँ कहीं भी सामाजिक यथार्थ या वास्तविकता से मेल नहीं खाती हैं। इन भ्रातियों का सीधा संबंध लगातार पिसने वाली स्त्री जीवन के उन पड़ावों से है जिसमें वह पुरुष की सामती मानसिकता का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। इन कतिपय धारणाओं के परिणामस्वरूप पूरा स्त्री—विमर्श आका, अविश्वास और अनिश्चितता का शिकार हो गया जिससे स्त्री—विमर्श को लेकर ऊहापोह की स्थिति बनी हुई है।

**मुख्य शब्द :** यथार्थ, भ्रातियाँ, पुरुषोचित, पितृसन्ता, यौनमुक्ति, सौन्दर्य प्रसाधन, व्यूटीशियनों, अस्तित्व और अस्मिता।

## प्रस्तावना

वर्तमान समय में स्त्री विमर्शत्याज्य दृष्टिकोण नहीं बल्कि एक सार्थक स्वीकृत, समग्र दृष्टि कोण है जो संवेदनशील नागरिकों में शोषित और प्रवंचित स्त्रियों के प्रति सहानुभूति और मानवीय दृष्टिकोण विकसित कर पूरे समाज के शोषित वर्गों को समझने की क्षमता प्रदान करता है। स्त्री विमर्श में उठने वाले सवालों के माध्यम से स्त्री विरोधी पितृ सत्तात्मक समाज के दोहरे माप दंडों, पैतृक मूल्यों, लिंगभेद की राजनीति और स्त्री उत्तीर्ण के अन्तर्निहित कारणों को समझने की भी दृष्टि प्राप्त होती है।

## उद्देश्य

स्त्री विमर्श के नाम पर साहित्य में स्त्री मुक्ति से सम्बन्धित कई भ्रामक धारणाएं बन रही हैं। इन भ्रामक धारणाओं को यथार्थ रूप में विश्लेषित करने का प्रयास किया जाएगा। क्या स्त्री आन्दोलन पश्चिम से अयातित है या भारतीय रूप में, क्योंकि पश्चिम समाज में स्त्री की जीवन शैली, परम्परा और मूल्य विश्व के अन्य देशों से भिन्न हैं। स्त्री विमर्श में पुरुष के नकार को, देह की स्वतन्त्रता के नाम पर स्त्रो मुक्ति आदि कई प्रश्नों पर दृष्टिपात किया जाएगा। क्या स्त्री विमर्श में स्त्रीत्व की अवधारणा बेबुनियाद है? विमर्श के नाम पर स्त्री की इतनी भ्रामक और विकृत व्याख्या क्यों? इन सभी प्रश्नों को यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा।

वर्तमान समय में पूरे विमर्श में 'स्त्री—विमर्श' शब्द लोगों को चौंका रहा है। स्त्री—मुक्ति आन्दोलन को कई प्रकार की अनुकूल और प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ रहा है। चीन, नामीबिया, परु, बंगलादेश, कन्या, रूस, पूर्वी यूरोप के देशों कैथोलिक चर्च और हिन्दू परंपरावादियों की दृष्टि में नारीवाद अनैतिक आचरण का पर्याय है और हर जमीन से जुड़े आन्दोलन कर्त्ताओं विशेषकर पूर्वी यूरोप के वामपंथियों के अनुसार नारीवाद मात्र एक बुजुआ विचार है। हालात यह है कि स्त्री अधिकारों के प्रबलतम समर्थकों ने भी स्त्री—विमर्श को संदेह की दृष्टि से देखा है। परन्तु प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति कैसे बनी आर ऐसा क्यों हो रहा है? इस प्रश्न पर व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार करना होगा।

महिला मुक्ति के अनेक समर्थक यह मानते हैं कि इस आन्दोलन का मूल स्रोत पश्चिम है। यह विचारधारा आयातित है और इसकी पैरोकार पश्चिमी



**जगमोहन शर्मा**  
शोध छात्र,  
हिन्दी विभाग,  
जम्मू विविद्यालय  
जम्मू और कश्मीर

समाज की श्वेत मध्यवर्गीय स्त्रियाँ हैं। उनके नज़रिए में पश्चिमी समाज में स्त्री की जीवन शली, परपरा और मूल्यबोध विश्व के अन्य देशों से भिन्न हैं। तीसरी दुनियाँ के देशों में रोजगार और वैचारिक स्वतंत्रता की दृष्टि से मर्द स्वतंत्र नहीं है तो भला स्त्री कैसे मुक्त हो सकती है? यह बात कुछ हद तक ठीक भी है कि पश्चिमी और तीसरी दुनियाँ के देशों में संस्कृति भिन्न है परन्तु स्त्री की समस्याएँ तो पूरे विश्व में एक जैसी हैं। यह मानना गलत है कि पाँचम की स्त्री की स्थिति भारत की स्त्रियों से अधिक अच्छी रही है और उसे स्वतंत्रता और स्वतंत्र जीवन जीने के अधिकार कुछ अधिक मिले हैं। हम जानते हैं कि यूरोप में वोट डालने का अधिकार स्त्री को एक लम्बे अरसे के संघर्ष के बाद मिला था। पश्चिम में स्त्री की उन्मुक्त सोच को लेकर एक भ्रमक धारणा हमारे बीच विद्यमान हुई है। इस दुनियाँ में स्त्रियों का स्थान हमेशा दोयम दर्ज का रहा है, इस सत्य को किसी प्रमाण की जरूरत नहीं। विंव के सभी द”गों में ऐसी स्थिति रही है। भारतीय साहित्य के समान पाश्चात्य साहित्य में भी स्त्री को हीन दृष्टि से देखा गया है। नारी संबंधी अपने विचार व्यक्त करते हुए बॉयरन कहते हैं।

“नारी अथवा अन्य किसी वस्तु पर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि वह झूठे होते हैं।” एफ.एम. पियारे नारी के अस्तित्व को नगण्य मानता है “नारी का अस्तित्व वायु में उड़ते पंख के समान है, जो कि असत्य है।” इस से “स्प”ट है कि पाँचमी समाज में भी स्त्री को लगभग उसी नज़रिए से देखा गया जिस दृष्टि में भारतीय समाज में देखा गया है। पूरे विश्व में स्त्री संबंधी परस्पर विरोधी धारणाएँ दिखाई देती हैं। जहाँ एक ओर उसे महानता के शिखर पर स्थापित किया गया है वहाँ दूसरी ओर उसे अधम कहकर निंदा का पात्र बनाया गया। जो धारणाएं भारत में रही हैं थोड़े बहुत अंतर के साथ वे पश्चिम में भी रही हैं। स्त्री—विमर्श को लेकर अनक भ्रांतियाँ व्याप्त रही हैं। यह मान लिया जाता है कि स्त्री—विमर्श अराजक मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है और सामाजिक व्यवस्था की नींव हिला रहा है। इस विचारधारा से प्रभावित स्त्रियाँ पुरुषों से नफरत करने लगती हैं। दरअसल, ये सभी धारणाएँ भ्रामक हैं। वास्तविकता कछ और है। “अगर पारिवारिक संरचनाएँ मानवीय हैं तो अपनी वैचारिक संभावनाओं सहित नारीवाद परिवार और समाज के मूल्यों को नष्ट करने के बजाए बचाना चाहेगा।” स्त्री—विमर्श पारस्परिक सामाजिक व्यवस्था की अविवेकपूर्ण स्थितियों को बदलना चाहता है, इस बदलाव को टूटना तो नहीं कहा जा सकता। यह एक ऐसे समाज की संरचना करना चाहता है जो समता और न्याय पर टिका हो, जिस में स्त्री और पुरुष का आपसी संबंध सोहार्द और उष्मा से सना हुआ हो। यदि स्त्री—विमर्श न्याय की जमीन पर खड़े होकर यथास्थिति के परिवर्तन के पक्ष में है तो इसे गलत नहीं माना जाना चाहिए।

स्त्री—विमर्श में जब पुरुष के नकार को स्त्री की मुक्ति के पर्याय में देखा जाता है तो यह भ्रम पैदा होने लगता है कि यह विमर्श समस्त पुरुष जाति को नकारना चाहता है लेकिन वास्तविकता कुछ और है। अगर समस्त पुरुष वर्ग को नकार दिया जाए तो प्र”न उठता है कि इस सामाजिक व्यवस्था के पिछले पाँच हजार साल के ज्ञात

इतिहास में इस से जुड़ी मानवीय और विकासमूलक संभावनाएं कैसे पनपीं और क्यों अचानक बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यह एकदम से नकारने लायक हो गया? वस्तुतः यह लड़ाई सीधे—सीधे पुरुष से नहीं बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था और पुरुष वर्चस्व से है। इस व्यवस्था में स्त्री के प्रति शोषण की जो मानसिकता है, लड़ाई उस शोषण और मानसिकता के खिलाफ है।

पारिवारिक संकल्पना के भीतर संबंधों का जो ताना—बाना है, पुरुष भी इस पूरे तंत्र में स्त्री की तरह अपनी हैसियत के अनुसार पदानुक्रम का शिकार होता है। इसका अर्थ यह है कि समस्त पुरुष वर्ग को नकारा नहीं जा सकता। अगर स्त्री—विमर्श में ऐसा होगा तो यह प्रकृति विरोधी और समाज के लिए खतरनाक हो सकता है। यह केवल मनुष्य के रूप में व्यवहार पाने के लिए किया गया स्त्री का संघर्ष है। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप ही वह आज कुछ हद तक आजाद हुई है। “आजादी की इस समग्र अवधारणा के आलोक में मुझे लगता है कि महिला पुरुषों के मुकाबले अधिक स्वतंत्र हो सकती है। ब”तैं स्त्री—पुरुष संबंधों में आत्मिक—मानसिक विकास की थोड़ी सी गुजारीश पैदा की जा सके।” जब तक स्त्री—पुरुष संबंध मानवीय आधार पर नहीं ठहरते तब तक यथास्थिति बनी रहेगी। वास्तव में स्त्री—विमर्श पुरुष विरोधी न हो कर पुरुष सत्ता के वर्चस्व के खिलाफ है जो स्त्री के दमन शोषण और उत्पीड़न का मुख्य कारण रहा है। इस “पुरुष वर्चस्व ने समूची दुनिया में अपने अधिकारों को ‘मनुष्य का अधिकार’ घोषित किया है। किसी भी क्रांति ने, किसी भी संविधान ने, किसी भी कानून ने नारी के पक्ष में चूँ तक नहीं किया।” स्त्री—विमर्श ने दोनों के अस्तित्व को समान रूप से सम्मान देने का समर्थन कर दोनों को मनुष्य रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया है। यह पुरुषोंचित मानसिकता से चल रहे समाज में स्त्री की स्वतंत्रता के हनन उसे अपने से कमतर रख कर अपना बड़प्पन बनाए रखने की कोशिश, शोषित, उत्पीड़ित करके भेड़िया बने रहने की प्रवृत्ति के विरुद्ध चल रही लड़ाई है।

इस में स्वतंत्रता चाहने वालों स्त्री से द्वेष करके उस पर वार करना भी पुरुष तान्त्रिक समाज की नियति बनता जा रहा है। स्त्रीवादी लेखिका तसलीमा के अनुसार “जो पुरुष सड़े—गले पुराने पुरुषतान्त्रिक समाज में कुछ भी बदलने नहीं देते, अपनी नारी विरोधी मानसिकता में भी रत्तो भर हेर—फेर नहीं होने देते — जो लोग औरत मर्द की समता में विश्वास नहीं करते, जो लोग पुरुष तंत्र रूपी साँप को दूध—केला खिला कर पाल रहे हैं, जिन लोगों ने प्रतिज्ञा की है कि औरत को वह जिन्दगी भर अपने पैरों तले कुचलते पिसते रहेंगे। मैं चाहती हूँ कि वह इंसान बने, वह तमाम औरतें भी इंसान बनें जो पुरुष तंत्र को बचाए रखने के लिए सचेतन तरीके से, हर किसी की मदद कर रही है। मैं मानती हूँ कि वह लोग लिंग आधारित वै”मय को अस्वीकार कर द, सच्चाई और समता के प्रबल विश्वासी बने। मानवमात्र के सच्चे अर्थों में विंवासी हो, जीवन में मानवतंत्र की चर्चा हो, तो औरत मर्द में कोई फर्क बचेगा ही नहीं।” इस से यह सिद्ध होता है कि स्त्री—विमर्श प्रतिशोध पीड़ित नहीं है। स्त्री आंदोलन की समर्थक स्त्रियाँ पुरुष नहीं बल्कि एक मनुष्य के रूप में अपनी पहचान बनाना चाहती हैं। दरअसल स्त्री—विमर्श में

स्त्रीत्व की अवधारणा बेबुनियाद है, जो स्त्री को शोषित करती हैं। उसे स्त्री बना के उसकी मनुष्यता को छीन लिया जाता है। लादा हुआ स्त्रीत्व स्वीकार करने की जद्दोजहद जिन्दगी भर चलती रहती है। “औरत जन्म से ही औरत नहीं होती बल्कि बढ़कर औरत बनती है। कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबोगरीब जीवन का निर्माण करती है।”

जिस प्रकार पुरुष एक मानव है उसी प्रकार स्त्री भी मानव है, मानुषी है। जिस प्रकार पुरुष की प्रतिष्ठा है उसी प्रकार स्त्री की भी है। दोनों में बुद्धि, हृदय और ऐसे विकसित संस्कार हैं जो उन्हें जानवरों से भिन्न करते हैं। अपनी इस सामर्थ्य के कारण ही मनुष्य जानवर से भिन्न होता है। “बुद्धि एक सार्वभौम गुण के रूप में उभरती है जिसके कारण मनुष्य और जानवर की भिन्नता कायम रहती है। लेकिन स्त्री ने जब इस गुण का इस्तेमाल करते हुए अपने आप से, अपने परिवेश से और पुरुष की सत्ता से पूछा कि ‘क्या मैं इंसान हूँ? क्या मेरी भी कोई मानवीय गरिमा है? तो उसे जो जवाब मिला वह कुछ और था। उसकी समझ में आ गया कि इंसान की श्रेणी में तो पुरुष है। स्त्री तो संपूरक भर है।’ स्त्री में स्त्री होने के गुण सिखाए जाते हैं। वह प्रकृति की देन नहीं है। प्रकृति से स्त्री-पुरुष मनुष्य हैं लेकिन लैंगिक भेदभाव उसे लड़की या लड़का बनाता है। पुरुष को मनुष्य के रूप में ढाला जाता है और स्त्री को कंवल स्त्री के रूप में। उसे इंसान के तौर पर नहीं देखा जाता। मर्यादा का पालन, तुम घर में ही रहो, ज्यादा अंधेरे में बाहर नहीं निकलना जैसे फलसफों पर चलने वाली स्त्री को ही आदर्श की कसौटी पर कसा जाता है। “यह समाज, औरत—मर्द, दोनों को ही यह सबक सिखाता पढ़ाता आया है कि मर्द जरा ज्यादा इन्सान होता है, औरत जरा कम इंसान होती है। ऐसे बहुत से काम हैं जो औरत को नहीं करने चाहिए, मसलन उसे बोलना नहीं चाहिए, सोचना नहीं चाहिए। औरत तन से कमजोर होती है, कोमल होती है, मन से कमजोर होती है, औरत आजादी के लायक नहीं है।” यह सारी बातें पुरुष वर्चस्व की तो हैं। पुरुष भूल जाता है कि उसे जन्म देने वाली भी औरत ही है और वह उससे कमतर कैसे है। क्या सारी समस्याएं उसकी देह से जुड़ी हैं? जिस में उसका कोई दोष नहीं। यहां पुरुष मानसिकता क्यों नहीं बदलती। वह प्रत्येक औरत में अपनी संतुष्टि देखता है। क्या यह उसका हिसात्मक व्यवहार स्त्री को मानव समझता है? आए दिन बलात्कार की घटनाएं, कोख में ही कन्या भ्रूण को मार देना, पढ़ी-लिखी होने के बावजूद ससुराल पक्ष के द्वारा बहु-उत्पीड़न आदि अमानवीय घटनाएं पुरुष को कठघरे में खड़ा करती हैं। “मर्द यह समझते हैं कि समाज में औरत—मर्द की जो विषमता है, वह औरतों की समस्या है, उन लोगों की नहीं, इसके पीछे आन्दोलन करने की जिम्मेदारी औरतों की है लेकिन यह वै”म्य विलुप्त करने का दायित्व दोनों का है।” इन सारी बातों को अगर तर्क की कसौटी पर कसा जाए तो स्त्री का शोषण और दमन काल्पनिक नहीं यथार्थ है।

स्त्री माँ, बहन, बेटी, बहू आदि भूमिकाओं में पुरुष को मजबूत बनाती है। माँ के रूप में उसे बच्चों का पालन पोषण करने में जीवन की परम सार्थकता की

## Remarking

Vol-III \* Issue- I\* June- 2016

अनुभूति होती है। किन्तु इन सब के विषय में यह कहा जाने लगा है कि उसका मां, पत्नी, बहू आदि होना बातों ने स्त्री को स्वप्नों के भ्रमजाल में बाँध कर रखा है। मृदुला गर्ग इसे उग्र नारीवाद की देन मानती हैं **μ** “बीसवीं सदी के उग्र नारीवाद ने मातृत्व को स्त्री के पांव की बेड़ी बतला कर, एकदम विपरीत पूर्वग्रह को जन्म दिया। गर्भपात के अधिकार को नारी स्वातन्त्र्य का घटक मान लिया गया।” यह भी कहा जाने लगा कि “औरतों की मुकित की लड़ाई में सब से केन्द्रीय और मु”कल बिन्दु है ऐस्थिटिक्स।” इस तरह की मान्यताएं कुछ हद तक ठीक हैं किन्तु जरूरत से अधिक अवास्तविक और आन्धाती हो सकती है। स्त्री को इस अप्रमाणिक और तर्कहीन व्याख्या से बाहर आना होगा। उसे मनुष्य रूप में अपनी अस्मिता और अस्तित्व की पहचान करनी होगी। इसकी पहल पुरुष से ही होनी चाहिए थी जो उसकी ऐसी स्थिति के लिए जिम्मेवार है।

आजकल स्त्री-विमर्श का सबसे अहम और विवादित मुद्दा देह का है। देह की स्वतंत्रता आर उस पर स्वयं का अधिकार ही इस का एक मात्र ध्येय और लक्ष्य है। जिस प्रकार प्रत्येक आन्दोलन के आरम्भ में अनिश्चिता की स्थिति होती है उसके स्वरूप एवं सिद्धान्त गठन में वैचारिक मतभेद होने लगते हैं उसी प्रकार नारी मुकित आन्दोलन को लेकर भी तरह—तरह की व्याख्याएं प्रस्तुत को जाने लगी हैं। बहुत से लेखक और लेखिकाएं नारी मुकित का संबंध स्त्री देह की स्वतंत्रता से लगाने लगे। इस संबंध में राजेन्द्र यादव लिखते हैं — “यदि आर्थिक आत्मनिर्भरता ही स्वाधीनता की कुंजी है तो जब तक स्त्री के पास देह है और संसार के पास पुरुष, तब तक स्त्री को पुरुष के स्वामित्व से मुक्त कर के अपने अधिकार में लेने की, क्योंकि यौन शृंचिता, पतिव्रत, सतीत्व जैसे मूल्य स्त्री के सम्मान का नहीं पुरुष के अहंकार की दीनता और सुरक्षा का पैमाना है, पितृसता के मूल्य हैं और स्त्री की बड़ियां हैं, जिसने यह बेड़ियां उतार दी हैं वह स्त्री विंग्ट है।” इस प्रकार राजेन्द्र यादव नारी मुकित के नाम पर देह व्यापार को अबाध महत्व दे देते हैं। वे ‘आदमी की निगाह में औरत’ नामक अपनी पुस्तक में स्त्री को वेश्यावृत्ति की हद तक छठ देने के पक्ष में हैं। वह लिखते हैं “विडम्बना है कि नारी को अगर स्वतंत्र होना है तो वेष्या बनने के सिवा कोई रास्ता नहीं है, तभी वह जी सकेगी। वरना उसकी लगाम पिता, पति, पुत्र के हाथ में है।” यह कहना अनुचित न होगा कि राजेन्द्र यादव जैसे आलोचक स्त्री की स्वतंत्रता वेश्या होने में मानकर स्त्री मुकित आन्दोलन के पैरोकार कहलाने लगे तो यह आंदोलन बहुत शीघ्र ही दम तोड़ देगा। ऐसे में तो यही लगता है कि तथाकथित स्त्री समर्थक स्त्री देह को स्त्री मुकित के नाम पर विमर्श की वस्तु बना कर बेच और खरीद रहे हैं। इतनी भ्रामक और विकृत व्याख्या कर रहे हैं कि पुरुष से मनुष्य होने के वास्तविक इतिहास के साथ धोखा कर रहे हैं। वेश्यावृत्ति नारी दासता, विवशता और दीनता की पराकाष्ठा है जहाँ चंद पैसों के लोभ या विवशता में स्त्री पुरुष के इ”ारे पर नाचती है। अगर यही नारी मुकित है तो इस से बढ़कर स्त्री की अधोगति क्या हो सकती है? देह व्यापार उपभोक्तावादी संस्कृति की बेड़ियां में जकड़ी

नारी का सबसे धृणास्पद कार्य है। इससे स्त्री को हानि ही पहुँची है। स्त्री को उसकी दैहिकता और यौनिकता की हद तक लेना किसी भी सभ्य समाज में स्वीकृत नहीं है। देह मुक्ति से यौन मुक्ति (Free Sex) तक का सफर सामाजिक संबंधों या रिश्तों को खोखला बना सकता है। इससे स्त्री के समाज के प्रति सरोकार समाप्त हो सकते हैं।

देह विमर्श में एक ओर तो स्त्री पुरुषों के वर्चस्व से अपनी देह को स्वतंत्र कराने के लिए युद्धरत है तो दूसरी ओर अपनी देह के बहुमूल्य को<sup>1</sup> को उन्हीं को लुटाने के लिए व्यग भी है जिसे एक स्वस्थ समाज कभी स्वीकृत नहीं करता। पुरुषोचित मानसिकता से संचालित समाज स्त्री की प्रत्येक स्वतंत्रता को उच्छृंखलता का नाम देता है। उस पर भी स्वतंत्र देह का प्रयोग जो सदैव पुरुषों के लिए ही होता आया है। इस पर भी स्त्री को भद्रेस कहना पुरुष का ही काम है। तसलीमा ने कहा है **μ** “औरत अगर अपनी यौनेच्छा जाहिर करे तो समाज के सभी लोग उसके प्रति नफरत से छिछिये: करते हैं। औरत में सैक्स इच्छा नहीं होनी चाहिए। अगर वह कामेच्छा जाहिर करती है तो वह निलंज्ज है, भ्रष्ट है वेष्या है, नारी अपनो देह का अंग-अंग सजाए पुरुषों के लिए, अपने लिए नहीं, औरत जिन्दा रहे मर्दों के लिए अपने लिए नहीं।”**अतः स्त्री-विमर्श** के परिप्रेक्ष्य में पहले इस पुरुष मानसिकता को पुनः परिभाषित करने की जरूरत है। आज भी पुरुष इस जकड़न के साथ इसी मानसिकता को जी रहा है और स्त्री जाने अनजाने उसमें सहयोगिनी की भूमिका निभा रही है। औरतों को यह बार-बार एहसास करवाया जाता है कि उस का यौवन, रूप सौंदर्य ही वे योग्यताएं हैं जिनके पास रहने से ही उनके मनचाहे पुरुष व बाजार की नजरों में उन का कोई मूल्य है। इन का कम होना स्त्री को आतंकित करता है तो इससे निजात पाने के लिए वह सौन्दर्य प्रसाधनों के साथ-साथ व्यूटीशियनों के निर्देषों

## ***Remarking***

Vol-III \* Issue- I\* June- 2016

का भी सख्ती से पालन करती है। इस तरह स्वयं को बाजारवादी ताकतों के हाथों खुद को सौंप देती है। देह की स्वतंत्रता से न औरत को आजादी मिल सकती है और न ही उसे सम्मान मिल सकता है। इसके विपरीत वह फिर से अधीन हो रही है। वास्तविकता यह है कि स्त्री के लिए अपनी समझ-विवेक के अनुसार जीने की स्वतंत्रता अपेक्षित है। यही स्वतंत्रता उसे किसी न किसो बहाने नहीं दी जा रही। देह प्रदर्शन या यौन मुक्ति ही यदि उसकी स्वतंत्रता की मंजिल है तो यह माँग किसी के लिए आपत्तिजनक क्यों होनी चाहिए। पर उसे यह तो देखना ही होगा कि इस तरह वह अपने स्वत्व को ही तो जोखिम में नहीं डाल रही है।

### **निष्कर्ष**

आज समय में बदलाव आया है। आधुनिक सोच और शिक्षा के प्रचार-प्रसार से स्त्री जीवन के यथार्थ को सामने लाने का भरपूर प्रयत्न हो रहा है परन्तु इसके चलते पुरानी भ्रान्तियाँ और धारणाएं भी मौजूद हैं। जो बै<sup>2</sup>क आज ढीली पड़ चुकी हैं किन्तु कहीं न कहीं स्त्री के लिए समस्याएं खड़ी करती हैं। समस्याएं आज भी हैं जब तक पूरे समाज की सोच, नारी की सोच या एक व्यापक समझ नहीं बनती तब तक समस्याएं यूँ ही सामने खड़ी रहेंगी। जरूरत है तो भ्रान्तियों से जुड़े पूर्वाग्रहों से मुक्त होने, स्त्री को एक निर्जीव वस्तु नहीं वरन् एक सामान्य मनुष्य की तरह स्वीकारने और उसकी संवेदना को समझने की, तभी नारी के साथ जुड़ी देह विमर्श की स्थूलता से परे उससे जुड़े सूक्ष्म सरोकारों और पहलुओं की सही पहचान संभव हो सकेंगी।

### **सन्दर्भ गच्छ सूची**

1. धर्मपाल, नारी एक विवेचन
2. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री
3. इन्दु भारती, आधी आबादी
4. तसलीमा नसरीन, औरत का कोई देश नहीं
5. सिमोन द बोजवार, स्त्री उपेक्षिता